जिजीविषा

मृदुला गर्ग

जिजीविषा

मृदुला गर्ग

मृदुला गर्ग

जन्म : 25 अक्तूबर, 1938।

जन्मस्थान : कलकत्ता (प. बंगाल)।

शिक्षा : दिल्ली विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम.ए.।

तीन-चार वर्षों तक अध्यापन करने के बाद 1970 से निरंतर लेखन-कार्य।

प्रकाशित पुस्तकें : उसके हिस्से की धूप, वंशज, चित्तकोबरा, अनित्य, मैं और मैं (उपन्यास), कितनी कैदें, टुकड़ा-टुकड़ा आदमी, डैफोडिल जल रहे हैं, ग्लेशियर से, उर्फ सैम (कहानी-संग्रह); एक और अजनबी (नाटक)।

'उसके हिस्से की धूप' का स्वयं अंग्रेजी में अनुवाद तथा 'स्काई स्क्रेपर' नाम से अंग्रेजी में ही अनूदित-संपादित विभिन्न हिंदी कहानियाँ। कई भारतीय भाषाओं के अलावा जर्मन, चेक, अंग्रेजी और रूसी भाषाओं में भी कहानियों के अनुवाद प्रकाशित।

मध्य प्रदेश साहित्य परिषद से 'उसके हिस्से की धूप' तथा आकाशवाणी द्वारा 'एक और अज़नबी' नामक कृतियों पुरस्कृत।

जिजीविषा

"इन्हें पहचानते हो ?" मेरी पत्नी ने अपना दमकता चेहरा मेरे चेहरे से सटाकर पूछा।

मैंने पूरा दम लगाकर गर्दन हिला दी। नहीं, मैं इसे नहीं पहचानता। अपनी बात से मैं खुद दहल गया। मुझे लगा, मैं इतनी जोर से चीखा कि मेरे एक 'नहीं' ने उस पुराने अस्पताल की सफेद दीवारें हिलाकर रख दी होंगी।

फिर सामनेवाला आदमी डरकर पीछे क्यों नहीं हटा ? उसके चेहरे पर जड़ी मुस्कराहट तक नहीं पिघली। एक सेहतमंद और जवान आदमी के सुर्ख चेहरे पर खिंची बेमतलब मुस्कराहट से ज्यादा भद्दी चीज और क्या हो सकती है ! यह जानता नहीं कि बिस्तर पर चित लेटे आदमी को सिर के ऊपर टँगी, बिजली-सी कौंधती उसकी मुस्कराहट कितनी बेहया मालूम पड़ रही होगी ! इसे पता होना चाहिए था कि एक बीमार के कमरे में आने से पहले अपने चेहरे की मुस्कराहट पोंछकर फेंक देनी चाहिए। यह सोचकर मेरा खून खौल रहा है कि फेंकना तो दरकिनार, इस आदमी ने मेरे लिए जबर्दस्ती इसे अपने मुँह पर ओढ़ रखा है। शायद इसका खयाल है कि मैं अपने चारों तरफ हँसी-खुशी देखना पसंद करता हूँ। बेवकूफ !

या...हो सकता है...मुस्कराना, न मुस्कराना इसके हाथ में न हो। यह जवानी की उस मंजिल पर हो, जहाँ अंदर का उत्साह चेहरे पर झलक ही जाता है। न आदमी उसे रोक सकता है, न रोकने की कोशिश करता है। होगा। ऐसे आदमी को बीमार के कमरे में आने की जरूरत क्या है ?

मेरी पत्नी ने दोनों हाथों में मेरा काँपता चेहरा थाम लिया। शायद तेजी से इधर-उधर घूमती मेरी गर्दन उसमें वितृष्णा पैदा कर रही थी। फिर अपनी तेजस्वी आँखें मेरी निस्तेज आँखों में डालकर, उसने एक-एक शब्द को नश्तर के चीरे-जैसी सफाई से बोलकर कहा, "ये नरेश हैं, बिट्टी जीजी के पति। लखनऊ से तुम्हें देखने आए हैं।"

मुझे देखने आए हैं ?

क्यों ?

क्या है मुझमें देखने को ?

यही कि मेरे पीले गाल पिचककर और भीतर धँस गए हैं। आँखों की चमक फीकी पड़ते-पड़ते लगभग गायब हो गई है। या कि मेरी जबान को लकवा मार गया है। 'नहीं' कहने तक की ताकत मुझसे छिन गई है। इसीलिए तो इतनी जोर से गर्दन हिलानी पड़ी थी। क्योंकि मैं जानता था कि 'नहीं' कहने की कोशिश में जो रिरियाहट मेरे मुँह से निकलेगी, मेरे प्रतिवाद को एक वीभत्स का रूप दे देगी।

एक हफ्ता पहले तक मैं इस हालत में भी नहीं था कि गर्दन हिला सकूँ। यह तो आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान का कमाल है कि मैं दुबारा कुछ हरकत कर सकता हूँ। पर मेरी आवाज ! मालूम नहीं मेरी आवाज मुझे वापस मिलेगी या नहीं !

मेरी पत्नी का कहना है, जैसे भी होगा वह मेरी आवाज मुझे वापस दिलवाकर रहेगी-फिजियोथेरेपी की मदद से। चाहे इसके लिए उसे सब कुछ छोड़कर रात-दिन मुझे बुलवाने का अभ्यास क्यों न कराना पड़े।

"कौन हैं ये ? न-रे-श ! तुम कहो न, न-रे-श !" मेरी पत्नी ने फिर एक बार हर अक्षर को चाकू से छीलते हुए कहा।

वह आदमी भी मुझे प्रोत्साहित करने के लिए अपनी जगह से आगे झुक आया। आँखों में पुरजोर चमक भरकर मेरी पत्नी को देखता रहा, फिर उसके शब्दों में शब्द मिलाकर बोला-हाँ, कहिए न न-रे-श ! यह शायद मात्र संयोग था कि जब उसने नरेश कहा तभी मेरी पत्नी ने भी तीसरी बार उस शब्द को अक्षर-अक्षर करके दुहराया, पर हुआ यह कि उन दोनों के मुँह से नरेश शब्द ऐसे निकला जैसे युगल-गीत गाया जा रहा हो। उसने भी महसूस किया होगा, क्योंकि अब वह पहले से ज्यादा जवान दिखाई देने लगा। उसके सुर्ख गालों पर लाली की एक और परत चढ़ गई। उसकी मुस्कराहट घार खाकर लपलपाई और इतनी शोख हो गई कि मेरी पत्नी ने चौंककर उसकी तरफ देखा और गर्दन झुका ली। फिर वह मेरे पास से उठकर कमरे के दूसरे कोने में चली गई।

"कहिए न...कोशिश कीजिए..." वह कहता रहा, "डॉक्टर का कहना है कि आप कोशिश करने से ही दुबारा बोलना शुरू कर सकते हैं। इस मर्ज की कोई खास दवा नहीं है। बस, कोशिश और अभ्यास ही...कीजिए न कोशिश कहने की...न-रे-श..." वह बिल्कुल मेरे करीब आ गया। इस खयाल से मैं काँप उठा कि कहीं वह मेरे